

राजस्थान के कवि

ठकुरसी

परमानन्द जैन शास्त्री

राजस्थान भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण अंग है। यहाँ की भूमि वीर प्रसव रही है। यहाँ के वीरों की वीरता, साहस, शौर्य की गरिमा से राजस्थान गौरवान्वित है। उसी तरह वह साहित्य और संस्कृति के लिए भी गौरव का स्थान रहा है। यहाँ के साहित्य मनीषियों ने वीर योद्धाओं की तरह संस्कृति के संरक्षण और साहित्य निर्माण द्वारा देशभक्ति, नैसिकता और सांस्कृतिक जागरूकता का परिचय दिया है। इस दृष्टि से राजस्थान की महत्ता लोक गौरव का प्रतीक है। राजस्थान के विपुल शास्त्र भंडारों में विविध भाषाओं में कवियों की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। वहाँ अनेक जैनाचार्यों, विद्वानों, भट्टारकों और कवियों का यत्र-तत्र विहार रहा है, जिससे देश में जागृति और धार्मिक मर्यादाओं का संरक्षण हुआ है। उन्होंने अनेक

संकटों और भयावह समयों के झंझावातों से भारतीय साहित्य को संरक्षण प्रदान किया है। इस कारण वे अभिनंदनीय हैं। कवि ठकुरसी राजस्थान की इस महान परम्परा के एक प्रमुख कवि थे, भारतीय साहित्य को उनकी देन अविस्मरणीय है।

कवि ठकुरसी कविवर घेल्हा के पुत्र थे। इनकी माता बड़ी धर्मिष्ठा थी। गोत्र पहाड़्या, जाति खंडेल-वाल और धर्म दिगम्बर जैन था।¹ यह सोलहवीं शताब्दी के अच्छे कवि कहे जाते थे। कविता करना एक प्रकार से आप की पैतृक सम्पत्ति थी; क्योंकि आपके पिता भी अच्छी कविता करते थे। परन्तु अद्यावधि उनकी कोई रचना अवलोकन में नहीं आई। संभव है अन्वेषण करने पर प्राप्त हो जाय।

1. पपड पहाडिह बंस शिरोमणि, घेल्हा गरू तसु तियवर धरमिणी ।
ताह तणइ कवि ठाकुरि सुन्दरि, यह कहि किय संभव जिणमंदिरि ॥
मेधमालावय प्रशस्ति

कवि की इस समय सात कृतियाँ उपलब्ध हैं। वे सभी कृतियाँ अभी तक अप्रकाशित हैं। उनका अव-
लोकन करने से जहाँ कवि की काव्य-शक्ति का परिचय मिलता है वहाँ उनकी प्रतिभा का दर्शन हुए बिना नहीं रहता। रचनाओं में स्वाभावतः माधुर्य और प्रासाद है, और गति में प्रवाह है, उन्हें पढ़ते हुए जी अरुचि नहीं होती, किन्तु शुरू करने पर उसे पूरी किये बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। आपकी सातों रचनाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

कृपाण चरित्र, पारसनाथ श्रवण सत्ताइसी, जिन-
चउबीसी, मेघमाला व्रतकथा, पंचेन्द्रिय वेलि, नेमिसुर की वेलि, और चिन्तामणि जयमाल। इनमें से प्रथम रचना का परिचय पं. नाथूरामजी प्रेमी बम्बई ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में कराया था। कृपाण चरित्र की एक प्रतिलिपि मेरे पास है, जिसे मैंने सन् 1945 में जयपुर के किसी गुच्छक पर से नोट की थी। कवि ने इसमें अपनी आँखों देखी एक घटना का चित्रण किया है, घटना सजीव है, और कवि ने उसे 35 पद्यों में अंकित करने का प्रयत्न किया है। रचना सरस और प्रसाद गुण से भरपूर है। और कवि ने उसे वि. सं. 1580 के पौष महीने की पंचमी के दिन पूर्ण किया है, घटना का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

एक प्रसिद्ध कृपाण व्यक्ति उसी नगर में रहता था, जहाँ कविवर निवास करते थे। वह जितना अधिक कृपाण था उसकी धर्मपत्नी उतनी ही अधिक उदार और विदुषी थी। वह दान-पूजा-शील आदि का पालन करती थी। कृपाण ने सम्पदा को बढ़े भारी यत्न और अनेक कौशलों से प्राप्त किया था। धन संचय की उस की लालसा इतनी अधिक बढ़ी हुई थी, वह उसका जोड़ना जानता था, किन्तु खर्च करने-का उसे भारी मय लगा रहता था। वह रात दिन इसी चिन्ता में

संलग्न रहता था, कि किसी तरह से सम्पत्ति संचित होती रहे परन्तु उरं खर्च न करना पड़े। उसने कभी दान, पूजा, माला, उत्सव आदि धार्मिक कार्यों में धन खर्च न किया था। माँगनेवालों को कभी भूल-कर भी नहीं देता था, और न किसी देव मन्दिर, गौठ या सहभोज में ही धन को व्यय करता था। भाई, वहिन, बुआ, भतीजी और भाणिजी आदि के न्योता धाने पर कभी नहीं जाता था, किन्तु सदा रूखा-सा बना रहता था। उसने कभी सिर में तेल डालकर स्नान नहीं किया था। धन के लिए झूठ बोलता था, झूठा लेख लिखाता था, कभी पान नहीं खाता था और न किसी को खिलाता था। न कभी सरस भोजन ही करता था, और न कभी चन्दनादि द्रव्य का लेप ही करता था। न कभी नया कपड़ा पहिनता था, कभी खेल-तमाशे देखने भी नहीं जाता था, और न गीत रस ही सुहाता था, कपड़ा फट जाने के भय से उन्हें कभी नहीं धोता था। कभी-कभी अभ्यागत या पाहुना आ जाने पर भी उसे नहीं खिलाता था—मुँह छिपाकर हर जाता था इसी से पत्नी से रोजाना कलह होती थी, जैसा कि कवि की निम्न पंक्तियों से प्रकट है :—

“झूठ कथन नित खाइ लेखे लेखी नित झूठी,
झूठ सदा सह करे, झूठ, नहु होइ अपूठी।
झूठी बोलै साखि, झूठे झगड़े नित्य उपाबै,
जहि तहि बात विसासि घृति घनु घर महि ल्यावै
लोभ कौल यों चेतै न चिति जो कहिजै सोइ खवै,
धन काज झूठ बोलै कृपाणु मनुखजनम लाधो गवै ॥5॥
कदेन खाइ तंबोलु सरसु भोजन नहीं भक्वै,
कदेन कापड़ नवा पहिरि काया सुख रक्वै।
कदेन सिर में तेल घालि मल मूरख न्हावै,
कदेन चन्दन चरचै अंग अवीरु लगावै।
पेषणो कदे देखै नहीं श्रवणु न सुहाई गीत-रसु।
घर घरिणी कहै इम कंत स्यौं दई काइ दीन्हौं न यसु ॥6॥

वह दे न खाण खरचं न किवें दुवै करहि दिन कलह अति
सगी भतीजी भुवा वहिणि भाणिजी न ज्यावै ।
रहे रूसडो मोडि आपु न्योतो जब आवै ।
पाहुणो सगो आयो सुणै रहै छिप्पौ मुख रखिकर
जिव जाय तिवहि नीसरै यों धनु संच्यो कृपण नर ॥”

कृपण की पत्नी, जब नगर की दूसरी स्त्रियों को अच्छा खाते-पीते और अच्छे वस्त्र पहिनते तथा धर्म-कर्म का साधन करते देखती तो अपने पति से भी वैसा ही करने को कहती । इस पर दोनों में कलह हो जाती थी । तब वह सोचती है कि मैंने पूर्व में ऐसा क्या पाप किया है जिससे मुझे ऐसे अत्यन्त कृपण पति का समागम मिला । क्या मैंने कभी कुदेव की पूजा की, सुगुरु साधुओं की निन्दा की, कभी झूठ बोला, दया न पाली, रात्रि में भोजन किया, या व्रतों की संख्या का अपलाप किया । मालूम नहीं मेरे किस पाप का उदय हुआ जिससे मुझे ऐसे कृपण पति के पाले पड़ना पड़ा, जो न खरचे, न खरचने दे, निरन्तर लड़ता ही रहता है ।

एक दिन पत्नी ने सुना कि गिरनार की यात्रा करने संघ जा रहा है । तब उसने रात्रि में हाथ जोड़ कर हँसते हुए पति से संघ यात्रा का उल्लेख किया और कहा कि सब लोग संघ के साथ गिरनार और शत्रुंजय की यात्रा के लिए जा रहे हैं । वहाँ नेमि-जिनेन्द्र की वन्दना करेंगे, जिन्होंने राजमति को छोड़ दिया था । वे वन्दना-पूजाकर अपना जन्म सफल करेंगे, जिससे वे पशु और नरक गति में न जायेंगे, किन्तु अमर पद प्राप्त करेंगे । अतः आप भी चलिए । इस बात को सुनकर कृपण के मस्तक में सिलवट पड़ गई, वह बोला कि क्या तू बावली हुई है, जो धन खरचने की तेरी बुद्धि हुई । मैंने धन चोरी से नहीं लिया और न पड़ा हुआ पाया, दिन रात नींद, भूख, प्यास की वेदना सही, बड़े दुःख से उसे प्राप्त किया है । अतः खरचने की बात अब मुँह से न निकालना ।

तब पत्नी बोली हे नाथ ! लक्ष्मी तो बिजली के समान चंचला है । जिनके पास अटूट धन और नवनिधि थी, उनके साथ भी धन नहीं गया । जिन्होंने केवल संचय किया, उन्होंने उसे पाषाण बनाया, जिन्होंने धर्म कार्य में खर्च किया, उनका जीवन सफल हुआ । इसलिए अबसर नहीं चूकना चाहिए, नहीं मालूम किन पुण्य परिणामों से अनन्त धन मिल जाय । तब कृपण कहता है कि तू इसका भेद नहीं जानती । पैसे बिना आज कोई अपना नहीं है । धन के बिना राजा हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्नी को बेचा था । तब पत्नी कहती है कि तुमने दाता और दान की महत्ता नहीं समझी । देखो, संसार में राजा कर्ण और विक्रमादित्य से दानी राजा हो गये हैं, सूम का कोई नाम नहीं लेता, जो निस्पृह और सन्तोषी हैं वह निर्धन होकर भी सुखी हैं किन्तु जो धनवान होकर भी चाह-दाह में जलता रहता है वह महादुखी है । मैं किसी की होड़ नहीं करती, पर पुण्य कार्य में धन का लगाना अच्छा ही है । जिसने केवल धन संचय किया, किन्तु स्व-पर के उपकार में नहीं लगाया वह चेतन होकर भी अचेतन जैसा है, जैसे उसे सर्प ने डस लिया हो ।

इतना सुनकर कृपण गुस्से से भर गया और उठकर बाहर चला गया । तब रास्ते में उसे एक पुराना मित्र मिला । उसने कृपण से पूछा, मित्र ! आज तेरा मन म्लान क्यों है ? क्या तुम्हारा धन राजा ने छीन लिया, या घर में चोर आ गए, या घर में कोई पाहुना आ गया है, या पत्नी ने सरस भोजन बनाया है । किस कारण से तेरा मुख आज म्लान दीख रहा है । कृपण ने कहा—मित्र ! मुझे घर में पत्नी सताती है, यात्रा में जाने के लिए धन खरचने के लिए कहती है, जो मुझे नहीं भाता, इसी कारण मैं दुर्बल हो रहा हूँ । रात-दिन भूख नहीं लगती । मित्र मेरा तो मरण आ गया है । तब मित्र ने कहा, हे कृपण ! सुन, तू मन में दुःख न कर । पापिनी को पीहर पठाय दे, जिससे तुझे कुछ सुख मिले । यह सुनकर कृपण को अति हर्ष हुआ ।

एक आदमी को बुलाकर एक झूठा लेख लिख दिया कि तेरे जेठे भाई के घर पुत्र हुआ है, अतः तुझे बुलाया है। यद्यपि पत्नी पति के इस प्रपंच को जानती थी, किन्तु फिर भी वह उस पुरुष के साथ पीहर चली गई।

जब संघ यात्रा से लौट कर आया, तब ठौर-ठौर ज्योंतारों की गईं, महोत्सव किए गये और मांगनेवालों को दान दिया गया, अनेक बाजे बजे, और लोगों ने असंख्य धन कमया। जब इस बात को कृपण ने सुना तो अपने मन में बहुत पछताया। यदि मैं भी गया होता तो दूब ज्योंतार खाता, व्यापार करता, और धन कमाकर लाता। पर हाथ मैं कुछ भी नहीं कर सका। दैव योग से कृपण बीमार हो गया। उसका अन्त समय समझकर कुटुम्बियों ने उसे समझाया और दान-पुण्य करने की प्रेरणा की। तब कृपण ने गुस्से से भरकर कहा कि मेरे जीने या मरने पर कौन मेरा धन ले सकता है। मैंने धन को बड़े यत्न से रखा है। राजा, चोर, और आग से उसकी रक्षा की है। अब मैं मृत्यु के सम्मुख हूँ, अतः हे लक्ष्मी तू मेरे साथ चल, मैंने तेरे कारण अनेक दुःख सहे हैं। तब लक्ष्मी कृपण से कहती है कि—

“लच्छि कहै रे कृपण झूठ हों कदे न बोलों,
जु को चलण दुइ देइ गैलत्मागी तसु चालों।
प्रथम चलण मुझ एहु देव-देहुरे ठविज्जे,
दूजे जात-पतिदु दाणु चउ संघहिं दिज्जे।
ये चलण दुवै तँ भंजिया ताहि विहूणी क्यो चलौं,
झखमारि जाय तू हौं रही बहुडि न सगि थारे चलौं ॥”

मेरी दो बातें हैं, उनमें से प्रथम तो मैं देव मन्दिरों में रहती हूँ। दूसरे यात्रा, प्रतिष्ठा, दान और चतुर्विध संघ के पोषणादि कार्य हैं। उनमें से तूने एक भी नहीं किया। अतः मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकती।

इस तरह कृपण विचार कर ही रहा था कि जीभ थक गई, वह बोलने में असमर्थ हो गया, और वह इस संसार से विदा हो गया और कुगति में गया। पश्चात् पत्नि आदि ने उस संचित द्रव्य को दान धर्मादि कार्यों में लगाया।

कवि की दूसरी कृति 'पारमनाथ श्रवण सत्ताइसी' है, जिसमें जैनियों के तेवीसवें तीर्थंकर पार्वनाथ का जीवन-परिचय और स्तवन दिया हुआ है। रचना में 27 पद्य अंकित हैं। रचना साधारण होते हुए भी सुन्दर और प्रवाहयुक्त है, और सोलहवीं शताब्दी के हिन्दी भाषा के विकास क्रम को प्रस्तुत करती है। इस कृति में कवि के निवास स्थान चम्पावती (चाकसू) में संवत् 1578 के लगभग घटित एक ऐतिहासिक घटना के आँखों देखे दृश्य का चित्रण किया गया है जिससे उसका ऐतिहासिक महत्व हो गया है। कवि ने इस कृति की रचना संवत् 1578 के माघ महीने शुक्ल पक्ष की दोइज के दिन पूरा किया था जैसा कि उसके निम्न पद्य से स्पष्ट है :—

श्लेह णंदण ठकुरसी नामु, जिण पाय पंकय भसलु।
तेण पास शुम कियउ सचो जवि।
पंदरासय अठहत्तर माह मास सिय पख दुय जवि।
पढ़हि गुणहिं जे णारि-णर तह पूरिय मन आस।
इउं जाणे पिणु नित्त तुहु पढ़ि पंडित मल्लिदास ॥27

शाह इब्राहीम ने जब रणथम्भौर पर आक्रमण किया, और उसका प्रबल सैन्यदल नगर में और उसके आसपास के स्थानों में लूट-खसोट और मार-काट करने लगा, तब चम्पावती को छोड़कर अन्य नगरों के जन संत्रस्त होकर इधर-उधर भागने लगे उन्हें देखकर चम्पावती के निवासी जन भी घबड़ाने लगे, और उनमें से कितने ही जन भागने को उद्यत हुए। तब नगर के प्रमुख पंडित मल्लिदास आदि सज्जनों ने पार्श्व भवन में जाकर भगवान पार्वनाथ की मिलकर

स्तुति की, और यह प्रार्थना की, कि भगवन् ! हमें आपका ही सहारा है, हम सब लोगों की, इस विपत्ति से रक्षा हो। ऐसा कहने के पश्चात् भी लोगों को यह विश्वास न था कि इस विपत्ति से हमारा संरक्षण हो जावेगा। किन्तु उसी समय जनता को यह स्वयं आभास होने लगा, कि घबड़ाओ नहीं, शान्त चित्त से रहो, सब शान्ति हो जायेगी। और लोगों के देखते-देखते ही वह भयंकर विपदा सहसा ढल गई। लोगों को अमय मिला, प्रजा में शान्ति होगई, चित्त में निर्भयता आई। यह दृश्य देख जनता पार्श्वनाथ की जय बोलने लगी। जो लोग भय से भाग गये थे, वे अधिक दुःखी हुये, किन्तु नगर में रहनेवाले जन सुखी रहे। यह कवि का आँखों देखा घटना वर्णन कवि के शब्दों में इस प्रकार है :—

जब सुलीय उ राणि संग्राम, रणथंभुवि दुग गहु ।
जब इब्राहिम साहि कोपिउ, बलु बोली मोकलिउ ।
बोलु कबलु सबु तेण लोपिउ, जिव लग उग्गलि हाय सउं
मेच्छ मूढ मय वज्जि, चंपावति विणु देस सब, गणदहइ
दिसभंजि ॥21

तबहि कंपिउ सथल पुरलोउ, कोइ न कसु वर जिउ रहइ
भाजि दहै दिसि जाण लगै, मिलिविकरी तब बीनती ।
पारसणाह स्वामी सु अगै, सवणा जोतिक केवलि ।
चित्तु न करै विसासु, कालि पंचमइ पास पहु, जुग
लगउ तु आस ॥22॥

एभ जं पि विकरि विथुई पुज्ज, मल्लिदास पंडित पमुह ।
स इह था समीपु चायउ, उच्चावंत न उच्चयउ ।
हुवो जाणि सुरगिरि सवीयउ, इणविधि परतिउवारतिहु ।
पूरि वि हरी भणति, जयवंतहु हो पास पहु, जेण करी
सुख सांति ॥24॥

कवि की तीसरी कृति 'जन चउबीसी' है, जिसमें जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों का स्तवन किया गया है। स्तवन सुन्दर है।

चौथी कृति 'मेघमाला व्रतकथा' है। इस कथा की उपलब्धि भट्टारक हर्षकीर्ति अजमेर के शास्त्र भंडार के एक गुटके पर से हुई है। यह कथा 115 कठवक और 211 श्लोकों के प्रमाण को लिए हुए है। इस ग्रन्थ की आदि अन्त प्रशस्ति में इस कथा के रचने में प्रेरक, तथा कथा कहाँ बनाई गई, वहाँ के राजा और कथा का रचना काल दिया हुआ है।

मेघमाला व्रत भाद्रपद मास की प्रथम प्रतिपदा से शुरू करे, उस दिन उपवास करे, और जिन पूजा विधान तथा अभिषेक करे, सारा दिन धर्म ध्यान में व्यतीत करे। और पाँच वर्ष पर्यन्त इस व्रत का अनुष्ठान करे। पश्चात् उसका उद्यापन करे, उद्यापन की शक्ति न हो तो दूने दिनों तक व्रत पाले। जिन लोगों ने उस समय इस व्रत का पालन किया था, कवि ने उनका नाम भी प्रशस्ति में अंकित किया है। उससे ज्ञात होता है कि उस समय चम्पावती में इस व्रत के अनेक अनुष्ठाता थे, जिन्होंने निष्ठा से व्रत का पालन किया था। उस समय वहाँ राजा रामचन्द्र का राज्य था, और भट्टारक प्रभाचन्द्र वहाँ मौजूद थे।

इस ग्रन्थ की आदि प्रशस्ति में ब्रतलाया है कि कि दुढ़ाहड देश के मध्य में चम्पावती (जयपुर राज्य वर्तमान चारसू) नाम की एक नगरी है, जो उस समय धन-धान्यादि से विभूषित थी और जिसके शासक राजा रामचन्द्र थे। वहाँ भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर भी बना हुआ था जिसमें तात्कालिक भट्टारक प्रभाचन्द्र गौतम गणधर के समान बैठे थे और जो नगर निवासी भव्यजनों को धर्माभूत का पान करा रहे थे। उनमें मल्लिदास नामक वणिक पुत्र ने कवि ठकुरसी से मेघमाला व्रत कथा कहने की प्रेरणा की। उस समय चम्पावती नगरी में अन्य समाजों के साथ हांडेलवाल जाति के अनेक घर थे जिनमें अजमेरा और पहाडया गौत्रादि के सज्जनों का निवास था, जो श्रावकोचित

क्रियाओं का सदा अनुष्ठान करते रहते थे। वहाँ तोषक नाम के एक विद्वान भी रहते थे। श्रावकजनों में उस समय जीणा, तात्तु, पारस, वाकुलीवाल, नेमिदास, नाथूसि और भुल्लण आदि श्रावकों ने मेघमाला व्रत का पालन किया था। यहाँ हाथुव साह नाम के एक महाजन भी रहते थे, उनके और भट्टारक प्रभाचन्द्र के उपदेश से कवि ने मेघमाला व्रत की विधि-विधान का उल्लेख करते हुए संवत् 1580 में प्रथम श्रावण सुदी छठवीं के दिन उक्त कथा को पूर्ण किया था जैसा कि उसके निम्न पद्य से प्रकट है :—

हाथुव साह महत्ति महंते, पहाचंद गुरुउवए संते ।
पणदह सइ जि असीते, आगल सावण मासि छट्टिय
मंगल ॥

कवि की पाँचवी कृति 'पंचेन्द्रिय की बेलि, है। कवि ने स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र (कर्ण) इन पाँचों इन्द्रियों के रूपक द्वारा जो शिक्षा या अनुभूति प्रदान की है। वह केवल सुन्दर ही नहीं है, किन्तु मानव जीवन को आदर्श बनाने के लिये पीयूषधारा है। कवि ने एक-एक इन्द्रिय के विषय में अच्छा विचार किया है और दृष्टान्तों द्वारा उसे पुष्ट किया है। उस पर दृष्टि डालने से मानव उन इन्द्रिय-विषयों से विरक्त होकर आत्मसाधना की ओर अग्रसर हो सकता है। कवि को अपनी इस कृति पर स्वाभिमान है। उसकी मान्यता है कि— 'करि बेलि सरस गुण गाया चित चतुर मनुष समझाया'। कवि को अपनी सफलता पर दृढ़ विश्वास है। उसने स्पष्ट शब्दों में लिख दिया है—'जिह्न मनु इन्द्रिय बसि कीया, तिह हरत परत जग जीया'। जिस मानव ने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, उसने जगत को जीत लिया है।

कवि ने प्रस्तुत बेलि में इन्द्रियों का विवेचन जातियों के क्रम से किया है। प्रारम्भ में एक दोहे में स्पर्शन इन्द्रिय का स्वरूप हाथी का उदाहरण देकर

समझाया है। कवि ने लिखा है कि स्पर्शन इन्द्रिय प्रबल है, उसे वश में करना दुष्कर कार्य है किन्तु जिन्होंने उसे वश में किया वे संसार में सुखी हुए—

वन तरवर फल खातु फिर, पय पीवती सुछंद ।
परसण इन्द्रिय प्रेरियो, बहु दुख सहई गयंद ॥

कवि ने आगे पद्य में स्पर्शन इन्द्रिय की आसक्ति से होनेवाले दुःखों का वर्णन करने हुए लिखा है कि कामातुर हाथी कागज की हथिनी के कारण गड्ढे में पड़कर छुथा-तृषादि के घने दुःख सहता है, वह वहाँ से भाग भी नहीं सकता। उसके दुःख का कौन कवि वर्णन कर सकता है। कहाँ तो उसका सुछन्द वनभ्रमण, वृक्षों के उत्तम फल, और नदियों का निर्मल नीर, और कहाँ पराधीन हुए हाथी की प्राण घातक अंकुश की चोटें ?

'बहु दुख सहै गयंदो, तुम होय गई मति मंदो ।
कागज के कुंजर काजै, पडि खाडै स क्यों न भाजै ॥
तिहि सहीय घणी तिथि भूखो, कवि कौन कहै तिस दूखो ।

इस तरह स्पर्शन इन्द्रिय के कारण अनेक मानवों ने भी दुख भोगे हैं। रावण भी इसी कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ, उसकी कथा प्रसिद्ध है। इसके वेग के कारण मानव अन्धा हो जाता है; उसे हित-अहित का विवेक नहीं रहता। इसको वश में करने से लोक में यश और सुख मिलता है।

रसना इन्द्रिय के वश हुआ मानव भी अपना संतुलन खो बैठता है, वह विवेक को ताक में रख देता है। रस के स्वाद में अनुरक्त हुआ अपने को भूलकर स्वादु बन जाता है, जो अन्त में उसके मरण का कारण होता है। कवि ने मानव रूपी मछली के रूपक द्वारा इस सत्य की विशद व्यंजना की है। दोहे में रूपक की छटा देखते ही बनती है—

‘केलि करंता जनम जल, गाल्यो लोभ दिखालि ।
मीन मुनिख संसार सरि, काढयो धीवर कालि ॥

इस दोहे में जन्म को जल, मनुष्य को मछली, संसार को सरिता और काल को धीवर के रूप में देखना कितना सार्थक है । कवि ने आगे लिखा है—

‘सो काढ्यो धीवर काले, तिण गाल्यो लोभ दिखाले ।
मथ नीर गहीर परईठो, दिठि जाय नहीं जहाँ दीठो ॥
इह रसना रसकौ घाल्यो, घलि आइ सबइ दुख साल्यो ।
इह रसना रस के नाई, नर मुसँ बाप गुरु भाई ॥
घर फेडइ वा पांडै वांटा, नित करइ कपट घण घाटा ।
मुख झूठ सांच नहि बोलै, घर छाँडि दिसावर डोलै ॥
कुल ऊँच नीच नहि लेखइ, मूरख माहि भलि लेखइ ।
यह रस के लीये नर, कुण-कुण करम न कीये ॥
रसना रस विषय बिकारो, वसि होय न औगुण वागारो ।
जिह इहु विषय वसि कीयो, तिहि मुनिख जनम फल
लीयो ॥”

इस पद्य में कवि ने रसना की आसक्ति से होने-वाले परिणाम का दिग्दर्शन कराया है । रसना के जाल में पड़कर लोग घर की पूँजी और प्रतिष्ठा को धूलि में मिला देते हैं और छल-कपट का सहारा लिये भले मानुष इधर-उधर भटकते फिरते हैं । स्वाद के साम्राज्य में कुल परम्परा और सत्य को ताक में रखकर दिसावरो में डोलते फिरते हैं । यह कितना चुभता हुआ व्यंग है, जिसमें कोई कांटा और चुभन नहीं है परन्तु वह हृदय को उद्वेलित कर देता है । अन्त में कवि ने वह भावना व्यक्त की है कि जिसने रस विषय पर विजय प्राप्त करली, उसी का जीवन सफल है—

“भ्रमर पइट्टो कमल दिनि, घ्राण गन्धि रस रूढ ।

रेण पड्यो सो संकुच्यो, नीसर सबयो न मूढ ॥
सो नीसर सबयो न मूढो, अति घ्राण गन्धि रस मूढो ।
मनचित्ते रयणि सवायो, रस लेस्यो आज अघायो ।

जब ऊँगे लो रवि विमलो, सरवर विकसइ लो कमलो ।
नीसर स्यों तव यह छोडै, रस लेस्यो आइ बहोडै ॥
चित्तवतै ही गज आयो, दिनकर उगवा न पायो ।
जल पेठो सखर पीयो, नीसरत कमल खड् लीयो ॥
गहिसूडि पावतल चंप्यो, अलिमाखो घर हरि कंप्यो ।
इहु गंध विषम छै भारी, मनि देख हुव्यो न विचारी ॥

घ्राण इन्द्रिय की शक्ति बड़ी प्रबल है । वह दूर से ही छिपी हुई वस्तु का पता लगा लेती है । बिल्ली को दूध का पता जल्दी लग जाता है और भोरे को कमल का, चींटी को मिठाई का । सुरभित सुवास मिलने पर हम प्रमुदित होते हैं और बीमत्स गंध मिलने पर नाक-मुँह सिकोड़ लेते हैं और उससे दूर भागने का यत्न करते हैं । जिस तरह गंध लोलुपी भ्रमर कमल की पराग का रस लेता हुआ, उसमें इतना आसक्त हो जाता है कि कमल की कली से निकलना भूल जाता है । दिनास्त में कमल कली सम्पुट हो गई । और रस की खुमारी में बेसुध हुआ भ्रमर अनेक रंगीन कल्पना करता है—रातभर खूब रस पिऊँगा, जब प्रातःकाल सूर्योदय होगा, कमल कलियाँ विकसित होंगी, मैं उससे निकल जाऊँगा । इसी विचार मुद्रा में एक हाथी सरो-वर में जल पीने आया, और जल पीकर कमल को उखाड़ लिया, और पग तले दाबकर उसे खा गया । वेचारा भौंरा अपने प्राणों से हाथ धो बैठा । अस्तु भौंरे के मरण को दृष्टि में रखते हुए गंध का लोभ और आसक्ति का परित्याग करना चाहिये ।

आँखों का काम देखना है । यह जीव नेत्रों द्वारा रूप देखने का आदी है । जब यह रूप-सौन्दर्य के अवलोकन में आसक्त हो जाता है, तब अपना आपा खो बैठता है । आज संसार में रूपासक्ति के कारण कितना व्यभिचार हो रहा है । पतंग ज्योति रूप को देखकर अपने प्राण निछावर कर देता है, उसके अंग-प्रत्यंग विदग्ध हो उठते हैं । उसी तरह पुरुष भी नारी के अप्रतिम सौन्दर्य को निरखकर रूपासक्त हो अपना सर्वस्व खोकर प्राणों से

भी हाथ धोने बैठता है। कवि ठकुरसी ने रूपक के सहारे इस तथ्य को प्राणवान बना दिया है—‘दिठि देख तके पर गोरी’ वाक्य में कितनी सरल व्यंजना की है। इतना ही नहीं किन्तु कवि ने अहिल्या और तिलोत्तमा का उदाहरण देकर अपने कथन को पुष्ट किया है। इन पाँचों ही इन्द्रियों का स्वामी मन है, वह इन्द्रियों का सबल है, वही इनका प्रेरक है। यदि उसे वश में कर लिया जाय तो इन्द्रियों की विषयों में प्रवृत्ति ही न हो और वे निर्दोष बनीं रहें; क्योंकि मन ही उन्हें कामासक्त बनाता है। अतएव कवि ने ठीक ही कहा है—‘लोगणे दोस को नाही, मन प्रेरे देखन जांही।’ अतः विवेकी मनीषियों का कर्तव्य है कि वे मन को वश में करने का प्रयत्न करें। उससे सुख मिलता है—

नेह अचागल तेलतसु, वानी वचन सुरंग ।
रूप ज्योति पर तिय दिखै, पडइति पुरुष पतंग ॥
पडइति पुरुष पतंगो, दुख दीवै दहै ति अंगो ।
पडि होइ तहां जीवि पाखै, दिठि खंचि न मूरख राखै ॥
दिठि देख करै नर चोरी, दिठि देख तके पर गोरी ।
दिठि देख करै नर पायो, दिठि दीढा बधइ सतायो ॥
दिठि देखि अहिल्या इंदो, तनु विकल गई मति मंदो ।
दिठि देखि तिलोत्तम भूल्यो, तप तपो विधाता डूल्यो ॥
ए लोगण लंपट कूठा, वरज्या नहि होय अपूठा ।
ज्यों वरजै त्यों रस वाया, रंग देखे आपण भाया ॥
लोगणे दोस को नाही, मन प्रेरे देखन जांही ।
जो नयण हु ते वसि राखै, सो हरत परत सुख चाखै ॥

श्रोत्र इन्द्रिय का विषय शब्द की मधुरता, कोमलता, और प्रियता पर प्राण निछावर करना जीव का स्वभाव है। सगीत की स्वर्णम लहरी मानव को अपनी और आकृष्ट करती है। के की का रव बादलों की घटा फोड़कर सागर लहरा देता है। कुरंग वधिक का गीत सुनकर प्राण घातक तीर से व्यथित हो प्राणों को छोड़ देता है। सर्प भी नाद से मंत्रमुग्ध हो बिल से निकलकर मनुष्य के आधीन हो जाता है, इसलिये कवि ने

ठीक ही कहा है—यह नाद सुणंतो सांपो, बिल छोड़ नीसरची आपो’—उसी तरह यह मानव भी हिरण की तरह मधुर नाद के वशवर्ती होकर अपने प्राणों का परित्याग कर देता है।

वेग पवन मन सारिसौ, वनवासै लय भीतु ।

वधिक बाण मार्यो हिरण, कानि सुणंतो गीतु ॥
घणुखेचि वधिक सर हणियो, रस बीधो बाण न गणियो ।
इह नाद सुणंतो सांपो, बिल छोड़ि नीसर्यो आपो ॥”

इस तरह कवि ने इस रचना में पाँचों इन्द्रियों के विषयासक्त पाँच प्रतीकों द्वारा मानव को उद्बोधित करते हुए पाँचों इन्द्रियों को बस में करने का निर्देश किया है। जो मानव इन पाँचों इन्द्रियों को वश में कर लेता है, वह उभयलोक में सुख पाता है किन्तु जो इनके वशवर्ती होकर इन्द्रियों में विषयासक्त रहता है, वह जल्दी अपनी जीवन लीला से हाथ धो बैठता है—

अलि, गज, मीन, पतंग, मृग, एके के दुख दीद्व ।
जायत भौ-भौ दुख सहै, जिहि वसि पंच न कीद्व ॥

कवि की इस कृति का रचना काल संवत् 1585, कातिक सुदी त्रयोदशी है।

संवत् पंदरे से पंचासे तेरिस सुद कातिक मासे ।
जिहिमनु इन्द्रिय वसि कीया, तिह हरत परत जग जीया ॥

कवि की छठवीं कृति नेमीपुर की बेलि है जिसमें जैनियों के 22वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ और राजुल का जीवन-परिचय अंकित किया गया है। रचना शिक्षाप्रद है। कवि ने इसमें रचना काल नहीं दिया।

कवि की सातवीं कृति ‘चिन्तामणि जयमाल’ है। यह 11 पद्यों की जयमाल है जिसमें पारश्वनाथ के स्तवन रूप में मानव को संयमित जीवन व्यतीत करने के लिये प्रेरित किया गया है, क्योंकि असंयम दुर्गुणों की खान है। संयम के प्रभाव से ही शूली से

सिंहासन और सप से फूलों की माला बन गई थी ।
इससे संयम की महत्ता स्पष्ट है । रचना संक्षिप्त होते
हुए भी रोचक है । अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

धत्ता—इय वर जयमाला गुणहूँ विसाला,
घेल्ह सुतन ठाकुर कहए ।
जो णरु सुणि सिक्खवइ, दिण-दिण अंक्खइ,
सो सुहुमण वंछि उलहए ॥

कवि की प्रायः सभी रचनाएँ पुरानी हिन्दी की हैं,
उनमें अपभ्रंश भाषा के पुट के अतिरिक्त देशी भाषा के
शब्दों की बहुलता है । इनका प्रकाशन व इन पर शोध
कार्य होना चाहिये ।

